Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2025 SHISRRJ | Volume 8 | Issue 3
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

इस्लाम में संगीत की परम्परा और पारिजात

ज़ेबी फ़रहा
शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

Article Info

Accepted : 01 May 2025

Published : 08 May 2025

Publication Issue :

May-June-2025

Volume 8, Issue 3

Page Number : 01-07

शोधसार- संगीत एक ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें लय, ताल, स्वर और अन्य ध्वनियों का संयोजन होता है। संगीत का इतिहास मानव के इतिहास से जुड़ा है। अरब में संगीत की एक सुदृढ़ और समृद्ध परंपरा मौजूद थी। इस्लाम के फैलने के साथ-साथ यह परंपरा भी दूसरे देशों में पहुंची। अरबी संगीत ने विश्व भर में अपनी छाप छोड़ी और विभिन्न संस्कृतियों के साथ मिलकर नई संगीत शैलियों को जन्म दिया। पारिजात उपन्यास में संगीत के सामाजिक प्रभाव का उल्लेख है जो यह दर्शाता है कि संगीत न केवल एक कला है बल्कि एक सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधि भी है जो अलग-अलग समुदाय को एक साथ लाती है। पारिजात उपन्यास के माध्यम से इस्लाम में संगीत की सुदृढ़ परंपरा का पता चलता है।

बीज शब्द- इस्लाम, अरबी संगीत, भारतीय संगीत, भारतीयइस्लामी संस्कृति, मर्सिया, कव्वालीऔर नोहा।

मूल आलेख-संगीत एक ऐसी कला है जो स्वर और लयबद्ध शब्दों से बनी होती है। इसमें शब्द सार्थक या निरर्थक हो सकते हैं, लेकिन भावपूर्ण अभिव्यक्ति ही संगीत रचना का मुख्य उद्देश्य होता है। संगीत में सौंदर्य, आकर्षण और मनोरंजन के लिए विभिन्न संगीतिक तत्वों का प्रयोग किया जाता है। इन तत्वों के भिन्न-भिन्न प्रयोगों से विभिन्न संगीत की विधाएं अलग-अलग रूपों में पहचानी जाती हैं। उत्तर भारत में ये संगीत विधाएं हिंदुस्तानी संगीत (शास्त्रीय संगीत) के नाम से जानी जाती हैं। वहीं दूसरी ओर दक्षिण भारत में इसी प्रकार की विधाएं कर्नाटक संगीत कहलाती हैं।संगीत मनुष्य के जन्म से जुड़ा है। जब मनुष्य किसी भी भाषा से परिचित नहीं था तब भी वह लयबद्ध स्वर निकाला करता था। मिस्टर गल्फइलमिल ने अपनी पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ द अर्ली म्यूजिक ऑफ़ इंडिया' में लिखा है- "पूर्व पाषाण काल के लोग वास्तव में भारत के मूल निवासी थे, इनको संगीत का ज्ञान पर्याप्त मात्रा में था। संगीत वाद्य का जन्म इस काल में हो चुका था। पत्थर का एक संगीतिक वाद्य इस युग का पाया जाता है, जिसको अग्सा कहते हैं, परंतु इस वाद्य पर विद्वानों का मतभेद है। कुछ विद्वान इसको शिकार का औजार मानते हैं, लेकिन वास्तव में यह पत्थर का औजार नहीं है, संगीत वाद्य ही है, जिसको यह लोग बजा-बजाकर अपने विचित्र स्वरों का आनंद लिया करते थे। इन लोगों को नृत्य का ज्ञान नहीं था। 'हू हू सेवा, हू हू सेवा' विचित्र प्रकार की सांगीतिक ध्वनि निकालते थे।" [1] इसी प्रकार उत्तर पाषाण काल में संगीत पहले से अधिक निखर चुका था क्योंकि यह लोग सभ्यता की ओर अपना पहला कदम रख चुके थे। इनके हथियार तेज और चमकीले थे। इन लोगों का संगीत ज्ञान पूर्व पाषाण काल के लोगों से अधिक हो चुका था। पुरुष और महिलाएं दोनों ही संगीत का आनंद लिया करते थे।

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

इसके अतिरिक्त सामूहिक संगीत का भी इस युग में जन्म हो चुका था। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि संगीत के प्रति यह अनुराग इन लोगों में पक्षियों को देखकर हुआ होगा।

इतिहासकार मिस्टर टर्मिनल ऑक्सी ने अपनी पुस्तक 'The history of music facts में लिखा है–"उत्तर पाषाण काल में संगीत की अवस्था पूर्व काल से काफी सुधर चुकी थी। यदि हम इस काल की सभ्यता का विश्लेषण करें तो हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि उसकी पृष्ठभूमि में संगीत ही था जिसने उससभ्यता को जन्म दिया।"[2] विद्वान लोवास्को का कथन है– "वर्तमान संगीत की आधार पृष्ठभूमि ताम्र युग के संगीत पर रखी हुई है। वास्तव में इस युग का संगीत अब तक के युगों के संगीत से एक नवीन धारा का था। इस काल में नृत्य का चलन खूब हो चुका था। भारतीय लोगों ने ही नहीं बल्कि इस काल के संगीत से एशिया के अन्य देशों के लोगों ने भी प्रेरणात्मक शक्ति ली।"[3] इसी युग में संगीत को धार्मिक रूप मिला। "मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में संगीत संबंधी वस्तुएं भी मिली हैं, ईसा से पांच हज़ार वर्ष पूर्व की शिव जी की तांडव नृत्य करती हुई मूर्ति भी प्राप्त हुई है। एक और नारी मूर्ति नृत्य की मुद्रा में उपलब्ध हुई है। इससे मालूम होता है, सिंधु घाटी सभ्यता में संगीत का स्तर बहुत उत्कृष्ट था।"[4] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संगीत का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना मनुष्य का। जब भाषा का स्वरूप अभी अस्पष्ट था, तब भी मानव गायन करता था, और उसकी अस्पष्ट भाषा में लय और स्वरों का समावेश था। यह दर्शाता है कि संगीत मानव जीवन का एक अभिन्न अंग थाऔर यह हमारी भावनाओं, विचारों और संस्कृति का सदैव से ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

इस्लाम पूर्व समय में संगीत की एक समृद्ध परम्परा थी। "इस्लामी शब्दावली में संगीत के लिए मूसीक़ी का प्रयोग होता है। मूसीक़ी यूनानी शब्द है, अर्थात् रागों का ज्ञान। लातिनी में मुसिका कहा गया। दसवीं सदी ईसवीं तक अरबों में मूसीक़ी की गणना गणित विद्याओं में होती थी। रिसायल–अखवान–उस–सफा में लिखा है: मूसीक़ी से 'गिना' (राग) अभिप्राय है तथा 'मूसीकार' (संगीतज्ञ) से 'मुगन्नी' (गायक) तथा मूसीकात (गायनतंत्र) हैं। इस्लाम पूर्व काल में संगीत की अरबी ईरानी सिद्धांतों पर आधारित एक सामी मूल की परंपरा थी, जो यूनानी प्रभाव से वंचित नहीं थी। इस्लाम आगमन की पहली सदी में एक संगीत विशेषज्ञ 'इब्न–मुसजा'(लगभग 715 ई.) था, जो ईरानी संगीत के आधार पर 'गिना'(गायन) और ज़र्ब (वादन) में मर्मज्ञ था। अरबों में ईरानी 'औद' का साधारणतया प्रचलन था। अरबी औद में एक ही एक सरगम की सबतक थी, जो समानांतर स्वर 'सा रे गा मा पा धा नी' पर आधारित थी, परंतु ईरानी और चतुर्थ सुर के क्रम धारेपासा होता था।"[5] औद एक पारंपरिक तंतु वाद्य को कहते हैं जो अरबी इब्रानी (यहूदी), यूनानी, तुर्की, उत्तरी अफ्रीका और उनके आसपास के अन्य क्षेत्रों के संगीत में प्रयोग होता है। "प्राचीन काल से अरब के हिजाज भूमंडल में संगीत का प्रचलन था। युवा व्यावसायिक नाचने–गानेवालियों को 'क़ीनात' तथा वृद्धा गानेवालियों को मुगान्नियाँ कहा जाता था। यह गानेवालिया सुखद आयोजनों पर, त्यौहारों तथा युद्ध भूमि में अपने कला का प्रदर्शन करती थीं। उनके संगीत यंत्रों में 'मुवत्तर' तथा मुअज्ज़फ़ अधिक प्रचलित थे, जो एक प्रकार का 'बरबत' अथवा 'चंग' होता था, जिसके साथ औद भी बजाया जाता था। ईरानियों में साधारणतया 'बरबत' अधिक रुचिकर तथा में अरबों 'सहतारा' अर्थात किनूरा। ऊंटवाहकों का एक विशेष आलाप था, जिसको हुदाअ कहते थे। इससे शब्दावली हुदाअ–ख्वानी बनी। उससे 'नगमा–उल–नसुब' निकला, जो संभवत इस्लाम–पूर्व के देवता नसुब के भजन के रूप में गया जाता रहा होगा, क्योंकि इस्लाम–पूर्व काल में इसी देवता को समस्त स्वरों का सृजनहार मानते थे।"[6] अरबों में संगीत की एक समृद्ध और वैविध्यपूर्ण परंपरा थी, जिसमें स्त्रियों के विभिन्न वर्ग थे जो गायन में उत्कृष्टता प्राप्त कर चुकी थीं। इन गाने वाली स्त्रियों को विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता था, जैसे कि

कीनात, मुगन्निया, और मलिका। संगीत प्रेमी इन संगीत कार्यक्रमों में उपस्थित रहते थे और संगीत का आनंद लेते थे। यह परंपरा अरबों की सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।

"इस्लामी साम्राज्य का महत्वपूर्ण गायक तुवीस (705 ई.) था, जो मात्र 'दफ' (ढोलक) की गति पर ईरानी शैली में गाता था। वह सुरों का विशेषज्ञ गायक था। उसका एक नामवर समकालीन साइब गासिर था, जो प्रारंभ में कज़ीब पर गाता था, फिर औद पर गाने लगा। साइब गासिर उमैय्या-वंशजीय खिलाफत के प्रवर्तक अमीर मुआविया का परमप्रिय गायक था। अमीर मुआविया को संगीत के प्रति विशेष आकर्षण था, उनके दरबार से युवा व्यावसायिक नाचने-गानेवालियों की टोलियां सम्बद्ध थीं। उमैय्यावंशीय शासनकाल (661-750ई.) में इस्लाम-पूर्व की अरब परंपराओं की पुनरावृत्ति हुई तो संगीत भी अपने प्राचीन रूप रंग के साथ प्रचलित हुई।"[7] अमीर मुआविया के समय में संगीत के विकास का मुख्य कारण यह है कि अमीर मुआविया खिलाफत राशीदा से बिल्कुल अलग थे, वह बादशाह थे और किसी बादशाह के दरबार में इस प्रकार की कलाओं की कद्र और कीमत अधिक होती है। यही कारण है कि अमीर मुआविया के शासनकाल में अरबों की पुरानी विलासिताएं लौट आई। "अमीर मुआविया के शासनकाल में अन्य संगीतज्ञों के अतिरिक्त महिला संगीतज्ञ इज्जतुल-मिला को विशेष मान मर्यादा प्राप्त थी।"[8] अरब में स्त्रियां भी संगीत के प्रति रुचि रखती थीं। अमीर मुआविया का पुत्र यज़ीद बिन मुआविया ने अपने कुकृत्यों के चलते संगीत को कलंकित किया। अब्बासी वंशज खलीफाओं के शासनकाल में संगीत की प्रगति उमैय्यावंशीय खिलाफत से अधिक हुई। हारून रशीद के दरबार में संगीतकारों को विशेष स्थान प्राप्त था। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अरब में संगीत की एक समृद्ध और संगठित परम्परा मौजूद थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्यों, गायन शैलियों और संगीत सिद्धांतों का विकास हुआ।

मुसलमान भारत आगमन के साथ अपनी संगीत और कलात्मक परंपराएं लेकर आए, जो प्राचीन भारतीय परंपराओं से भिन्न और प्रतिकूल थीं। भारतीय संगीत कला को समझना उनके लिए कठिन था, और इस समस्या का समाधान शिक्षा द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। "प्राचीन भारतीय संगीतज्ञ वर्ग, जो मुख्य रूप से ब्राह्मणों पर आधारित था,'मूर्तिभंजकों' को संगीत की दीक्षा देना सहन न कर सकता था, क्योंकि उनका विश्वास था कि संगीत व्यक्ति को उसके समस्त पापों से मुक्त कर देती है और वह इन मुस्लिम पापियों की मुक्ति में सहायक नहीं बनना चाहते थे। उनकी कटुता की स्थिति यह थी कि उन्होंने जन-सभाओं में प्राचीन संगीतकला के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा दिए थे।"[9] ब्राह्मण वर्ग मुसलमानों को आध्यात्मिक लाभ से वंचित रखना चाहता था लेकिन समय के साथ देश और धर्म के बीच की घृणा और विभाजन की तीव्रता कम होने लगी। साथ में रहने से प्रेम और सौहार्द की भावना बढ़ने लगी, और संगीत इस प्रक्रिया में सर्वाधिक प्रभावी और दिलों को जोड़ने वाला ज़रिया बन गया। संगीत की भाषा ने दोनों समुदायों के बीच की दूरियों को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और लोगों को एक दूसरे के निकट लाने में सहायक बना।

हिंदू गायकों शिल्पकारों, दार्शनिकों, और विद्वानों ने मुसलमानों को अत्यधिक प्रभावित किया।मुसलमानों ने दर्शन, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, रसायन आदि की शिक्षा ब्राह्मण विद्वानों और भिक्षुओं से प्राप्त की। यह ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान दोनों समुदायों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गया, जिसने उनके बीच की दूरियों को कम करने में मदद की। मुसलमानों के घरों में भारतीय महिलाओं के प्रवेश से कई हिंदू रीति-रिवाज और परम्पराएं आ गईं। भारतीय गायिकाओं और नृत्यांगनाओं को दासी बनाए जाने के कारण भारतीय संगीत मुसलमानों के घरों में पहुंच गया। इससे दोनों संस्कृतियों के बीच संगीत का आदान-प्रदान हुआ और एक नए तरह के संगीत का विकास हुआ। "मौलवी संगीत को त्याज्य मानते थे, चिश्ती परंपरा के सूफी लोग भक्तिपरक संगीत आवश्यक मानते थे, सूफियों की सुहरावर्दी परंपरा के संस्थापक शेख बहाउद्दीन

जकरिया संगीत के मर्मज्ञ थे और मुस्लिम बादशाहों की दृष्टि में संगीत मनोरंजन का साधन था। "खिलजी और तुगलक नरेशों के युग में अनेक कव्वाल फारसी गज़लों के साथ हिंदी गाने भी खूब गाते थे और खिलजियों के युग में ही अमीर खुसरो ने भारतीय रागों का वर्गीकरण अभारतीय दृष्टिकोण से किया। हुसैनशाह शर्की खुसरो पद्धति का धुरंधर पंडित था और अनेक नए रागों का आविष्कारक हुआ। इसी को भारतीय संगीत में ख्याल का प्रवर्तक कहा जाता है, परंतु 'ख्याल' शीर्षक से गेय काव्य हमें दक्षिण के सूफियों में मिलता है।"[10] मुसलमान बादशाहों के दरबार में क़ाज़ी भी थे, जिनकी दृष्टि में संगीत त्याज्य था।सूफी मुरीदों को संगीत की आवश्यकता थी, वो ईश्वर भक्ति के लिए संगीत का सहारा लेते थे। शासन को इन दोनों की ही आवश्यकता थी, ताकि संतुलन बना रहे। विजित प्रदेशों में मस्जिदों के साथ-साथ सूफियों के लिए खानकाहों की स्थापना भी होती थी, जहां सूफी संगीत और भक्ति के माध्यम से ईश्वर से जुड़ते थे। इस तरह, संगीत और सूफीवाद ने मुसलमान शासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस्लामी धर्मशास्त्रियों ने संगीत के प्रति विरोध जताया, लेकिन मुसलमानों के इतिहास पर नज़र डालें तो हर युग में संगीत के प्रेमी मुसलमान मिलेंगे। संगीत कला में उनका योगदान अमिट है। हालांकि उन्होंने संगीत को अपने धर्म का अंग नहीं बनाया, लेकिन उन्होंने संगीत को इस्लाम में अपना लिया। सूफी संतों की समाअ की सभाएं संगीत से सजती हैं, जिसे वे ईश्वर से जुड़ने का माध्यम मानते हैं। संगीत के माध्यम से वे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करते हैं। "यद्यपि शिया उलमा संगीत सभाओं में सम्मिलित नहीं होते, यहां तक कि इमाम हुसैन की याद में आयोजित मजलिसों में सोज़ख्वानी के बाद ही आते हैं, परंतु सोज़ख्वानी में संगीत के व्यावहारिक प्रयोग को रोकने में सर्वथा असफल रहे हैं।"[11] सूफी संगीतज्ञों में अमीर खुसरो का नाम सर्वोपरि है, जिन्हें संगीत और काव्य दोनों में समान रूप से महारत हासिल थी। वे ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के परम भक्त और शिष्य थे। अमीर खुसरो ने विभिन्न सुल्तानों के दरबारों में अपनी सेवाएं दीं, जहां उन्होंने अपनी संगीत और साहित्यिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। उनकी रचनाएं और संगीत आज भी लोगों को प्रेरित और आनंदित करते हैं। "अमीर खुसरो की पुस्तक 'एजाज़े-खुसरवी' में लिखा है कि उन्होंने दरबार में ख़ुरासानी गायकों तथा भारतीय गायकों के बीच स्पर्धा में भाग लिया। उनका संगीत फारसी तथा हिंदी संगीत के सुंदर सम्मिश्रण पर आधारित है। चिश्तिया सूफियों में समाअ की संगीत सभाओं को आधारभूत महत्व प्राप्त है। ख़्वाजा निजामुद्दीन औलिया को समाअ के प्रति विशेष अनुराग था। उनका प्रसिद्ध कथन है: जिस सभा में हमारे साथी समाअ सुनें, वहां हमें भी मौजूद जानें। शैख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का स्वर्गवास कव्वाली सुनते-सुनते हुआ। शैख फरीदउद्दीन गंजशकर संगीत के रसिया थे। इसी प्रकार शैख नसीरउद्दीन चराग देहलवी तथा ख्वाजा बंदानवाज गेसूदराज़ भी समाअ की संगीत सभाएं आयोजित करने का आदेश देते थे। काज़ी सनाउल्लाह पानीपती ने सबसे आगे बढ़कर हदीसों से प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि यदि गायन का विषय इस्लाम के विरुद्ध न हो, गायक शुद्ध आचरण का हो, श्रोता कामुक न हो, नमाज़ का समय न हो, एकांत एवं शांतिमय वातावरण हो, तो गायन तथा हाथ या लकड़ी की चोट से बजनेवाले डफ, नक्करा, ढोल झांझ आदि शब्द वांछनीय हैं।"[12] समाअ एक सूफ़ी समारोह है जिसमें ज़िक्र या दिक्र के रूप में विभिन्न अनुष्ठानों का समावेश होता है। इसमें गायन, वाद्य बजाना, नृत्य, कविता पाठ, प्रार्थना और प्रतीकात्मक पोशाक पहनना शामिल है। समाअ का अर्थ है "सुनना", जबकि ज़िक्र या धिक्र का अर्थ है "याद करना"। यह सूफ़ीवाद में इबादत का एक विशेष रूप से लोकप्रिय तरीका है, जिसमें सूफ़ी संत और उनके अनुयायी ईश्वर के साथ जुड़ने का प्रयास करते हैं।

नासिरा जी की रचनाओं में गायन की विभिन्न विधाओं का उल्लेख हुआ है। जिसमें प्रमुख है, मर्सिया, मसनवी, नोहा, कव्वाली, ग़ज़ल, सोहर आदि। कथा साहित्य में इन विधाओं का उल्लेख भारतीय मुस्लिम समाज में संगीत की महत्ता और

उसके सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव को दर्शाता है। उपन्यास और कहानियों में पात्र गाते और झूमते नज़र आते हैं। नासिरा शर्मा ने मर्सिया के सम्बन्ध बहुत विस्तार से लिखा है। पारिजात उपन्यास में मर्सिया का उल्लेख अनेक स्थान पर हुआ है। मर्सिया एक प्रकार की शोक कविता या गीत है, जो मुख्य रूप से मुसलमानों द्वारा इमाम हुसैन और उनके परिवार के शहादत की याद में पढ़ा या गाया जाता है। यह शोक गीत मोहर्रम के महीने में विशेष रूप से पढ़े जाते हैं, जब इमाम हुसैन के शहादत की वर्षगांठ मनाई जाती है। मर्सिया में इमाम हुसैन और उनके परिवार की शहादत का वर्णन किया जाता है, और उनकी वीरता और बलिदान की प्रशंसा की जाती है। यह शोक गीत अक्सर शोक और दुख के साथ पढ़े जाते हैं, और उनमें इमाम हुसैन के प्रति प्रेम और सम्मान की भावना व्यक्त की जाती है। मर्सिया का महत्व शिया मुसलमानों के लिए बहुत अधिक है, क्योंकि यह उनके लिए इमाम हुसैन के शहादत की याद को ताजा रखने और उनकी वीरता और बलिदान को याद करने का एक तरीका है। मर्सिया के इस प्रकार के पढ़े जाने ने एक अनोखी संस्कृति को जन्म दिया, जिसमें शोक को एक उत्सव की तरह मनाने का चलन हुआ। अरब में शोक के गाये जाने की परंपरा ने भारत में हुसैनी शोक का रूप धारण किया, जिसमें मर्सिया ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मर्सिया के माध्यम से शोक को एक सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसने लोगों को एक साथ जोड़कर एक अलग संस्कृति का निर्माण किया। नासिरा शर्मा उपन्यास पारिजात में लिखती हैं, "मोहर्रम की ताजियादारी में संगीत को मर्सिया गायन से प्रोत्साहन मिला। भारत में मर्सिया का प्रारंभ दकन से हुआ। मर्सिया में संगीत का प्रचलन भी वहीं पहले-पहल हुआ। बादशाही आशूरखाना में मधुरभाषी ज़ाकिर प्रचारक तथा मृदुलकंठी गायकों द्वारा मर्सिया पढ़ने की चर्चा कुत्बशाही काल से मिलती है।"[13] नासिरा शर्मा के उपन्यास 'पारिजात' में मर्सिया का उल्लेख कई स्थानों पर किया गया है, जो दर्शाता है कि मर्सिया शिया समाज लोगों के जीवन में गहराई से जुड़ा हुआ है। उपन्यास के पात्र रोहन को इमाम हुसैन का दर्द अपने अंदर महसूस होता है, जब-जब वो मर्सिया सुनता है उसका दु:ख ताज़ा हो जाता है। जो यह दर्शाता है कि मर्सिया किस प्रकार लोगों को इमाम हुसैन के साथ जोड़ता है और उनके दर्द को महसूस करने में मदद करता है। नासिरा शर्मा लिखती हैं, "अरब की सरजमीं पर जो शायरी का पहला इजहार इंसानी जज्बे की शक्ल में आया था, वह मर्सिया था। मर्सिया पहले सोज़ की शक्ल में पढ़े जाते थे। सबसे पहले मिर्ज़ा दबीर के उस्ताद मिर्ज़ा ज़मीर ने मिंबर पर बैठ तहतुल्लफ़ज़ में मर्सिया पढ़ा।"[14] मर्सिया और नोहा दोनों में फर्क है, मर्सिया सिर्फ पढ़ा जाता है और नोहा छाती पीटकर मातम मनाते हुए पढ़ा जाता है।

'नोहा' शोक की कविता को कहा जाता है। मोहर्रम के दिनों में नोहा पढ़ा जाता है। नोहा का शाब्दिक अर्थ विलाप करने से है। इमाम हुसैन और उनके परिवारजनों के बलिदान की याद में इस प्रकार के शोक गीतों का चलन शिया समाज में है। नासिरा जी की रचनाएँ शिया समाज व संस्कृति को आधार बनाकर लिखी गई हैं। इन रचनाओं में पात्र नोहा पढ़ते दिखते हैं। घर का कार्य करते हुए स्त्रियाँ नोहा गुनगुनाती रहती हैं। जैसे- कर्बला में हुसैन प्यासे हैं। "मजलिसों में जाकिरी या मर्सियाख्वानी के बाद नोहा पढ़ते हैं और मातम करते हैं।"[15] रोहन दत्त के दादा ज्योति दत्त बहुत अच्छा नोहा पढ़ते थे। उन्होंने इमाम हुसैन की शहादत पर नोहा लिखा था। चौधराइन, हस्सो, बड़ी जद्दन और कल्लन मर्सियाख्वानी और नोहा पढ़ने में अपनी मिसाल आप थीं। ये तवायफें अपने ताजियों के साथ मर्सिया पढ़ती थीं तो सड़कों पर रास्ते बंद हो जाते थे, जाम लग जाता था। लखनऊ में मर्सियाख्वानी और ताजियादारी तवायफें भी किया करती थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर आम व खास संगीत में रूचि रखता है।

"मसनवी का शाब्दिक अर्थ दो होता है। यह काव्य का ऐसा रूप है, जिसके हर शेर के दोनों मिसरे एक ही रदीफ़ और काफिये में होते हैं। मसनवी के विषय की कोई सीमा नहीं है। कवि जिस विषय पर चाहे मसनवी लिख सकता है।"[16]

नासिरा शर्मा ने पारिजात में मिर्ज़ा शौक लखनवी की ज़हरे इश्क तहरीर को नाटकीय तरीके से प्रस्तुत किये जाने का वर्णन किया है। यह मसनवी प्रेम की व्यथा और विरह की मार्मिक कहानी को बयाँ करती है, जिसमें विभिन्न पात्र अपनी अलग-अलग भूमिकाओं में गाने के माध्यम से अपनी भावनाएं व्यक्त करते हैं।पारिजात उपन्यास में मिरासी परिवार का चित्रण एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो अपनी अल्प सुविधाओं के बावजूद भी संगीत की परम्परा को जीवित रखे हुए हैं।

नासिरा शर्मा लिखती हैं "कव्वाली इराकी संगीत की नक़ल थी। हिंदुस्तान क्या आई, यहाँ के रंग में रंग गई। अब तो यह सौ फीसदी हमारी इजाद लगती है। कव्वाली को सूफिया इकराम की सरपरस्ती की बदौलत फरोग मिला सरपरस्ती का यह वलवला अहदे शुजाउद्दौला से लेकर अहदे आसिफउद्दौला तक खूब चला।"[17] पारिजात उपन्यास में है कि अब कव्वाली को मज़ार पर गाये जाने की परम्परा धीरे-धीरे दम तोड़ रही है और उसके स्थान पर घिसे कैसेट चलाये जाने का रिवाज़ बढ़ गया है। इराकी संगीत की यह विधा समय के साथ परिवर्तित हो रही है।

निष्कर्ष- संगीत एक कला है जो ध्वनि के माध्यम से भावनाओं, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करती है। यह एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो श्रोताओं के हृदय की गहराई में भरे हुए भावों को उद्वेलित करती है जिससे उन्हें आनंद की अनुभूति होती है। अरब में संगीत की परम्परा बहुत ही प्राचीन और समृद्ध थी। बद्दू जनजाति मवेशी चराते-चराते सुदूर रेगिस्तानों में निकल जाते थे, उस समय उनके लिए संगीत ही मनोरंजन का माध्यम होता था। इसी आदत ने उनको लम्बे-लम्बे दीवान याद कराने की सामर्थ्य दी। भारत में मुस्लिम जब आये तो उनके साथ संगीत की अरबी तथा ईरानी परम्पराएँ थीं, जो भारतीय संगीत से अलग थीं। यह परम्पराएँ जल्द ही भारतीय संगीत के साथ मिल गई और संगीत की एक नई शैली ने जन्म लिया। नासिरा शर्मा के उपन्यास पारिजात में संगीत का प्रयोग धार्मिक दृष्टिकोण से अधिक किया गया है। मर्सिये को लेकर लेखिकाविशेष प्रकार से सचेत होकर चलती हैं। अरब की सरजमीं से पैदा होकर मर्सिया भारत में एक नए अंदाज़ में फला-फूला। पारिजात उपन्यास में मर्सिये के माध्यम से रोहन अपने दर्द की शिद्दत को महसूस करता है और अपने दु:ख को भूलने के लिए वो इमाम हुसैन की शहादत और अपने पूर्वजों हुसैनी ब्राहमणों का अध्ययन करता है। इसी प्रकार इस उपन्यास में नोहा, मसनवी, ग़ज़ल, दहा, सोहर आदि का वर्णन भी मिलता है। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि यह उपन्यास इस्लामी संगीत पर पड़े भारतीय प्रभाव को अच्छे से व्यक्त करता है।

संदर्भ सूची

1. उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहास,सरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, 1969, फिरोजाबाद, पृष्ठ-46
2. वही, पृष्ठ-47
3. वही, पृष्ठ-49
4. वही, पृष्ठ-53
5. जाफ़र रज़ा, भारतीय इस्लामी संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, 2013, इलाहाबाद, पृष्ठ-201
6. वही, पृष्ठ-202
7. वही, पृष्ठ-203
8. वही, पृष्ठ-203
9. वही, पृष्ठ-209
10. आचार्य बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, राजकमल प्रकाशन, 1974, दिल्ली, पृष्ठ-13
11. जाफ़र रज़ा,भारतीय इस्लामी संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, 2013, इलाहाबाद, पृष्ठ-231

12. वही, पृष्ठ–232
13. वही, पृष्ठ–234
14. नासिरा शर्मा, पारिजात, किताब घर प्रकाशन, 1969, नई दिल्ली, पृष्ठ–110
15. ज़ाफर रज़ा, इस्लाम के धार्मिक आयाम, लोकभारती प्रकाशन, 2012, इलाहाबाद, पृष्ठ–399
16. हिंदी साहित्य कोश भाग–1 ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृष्ठ–482
17. नासिरा शर्मा, पारिजात, किताब घर प्रकाशन, 1969, नई दिल्ली, पृष्ठ–339